फोटो साभार: इंडो-अमेरिकी चैंबर्स ऑफ कॉमर्स

वाराणसी के बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में ज्ञान अर्थव्यवस्था की चुनौतियों और अवसरों के बारे में बताते प्रोफेसर दोसानी।

भारतीय विद्यार्थियों को अमेरिकी गुर

गिरिराज अग्रवाल

प्रोफेसर दोसानी के अनुसार भारतीय विद्यार्थियों को टीम में काम करने और परियोजना प्रबंधन जैसे कार्यों में दक्षता हासिल करने की जरूरत है।

विश्वविद्यालयों से ताजा-ताजा निकले भारत के छात्रों में टीम में काम करने की कुशलता की कमी होती है। इसके अलावा वे अपने अमेरिकी समकक्ष छात्रों से तकनीक में भी एक पीढ़ी पीछे होते हैं। एसे छात्रों को समकक्ष स्तर तक आने में 18 महीने लगते हैं। पांच साल के अनुभवी भारतीय इंजीनियर को अमेरिका के समकक्ष स्तर पर आने में पांच साल लग जाते हैं क्योंकि उनमें परियोजना प्रबंधन की दक्षता उतनी नहीं होती। जबकि जो व्यक्ति 10 साल तक भारत में काम कर लेता है वह पदक्रम के अनुरूप सोचने का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उसे लेना सिलीकॉन वैली के लोग ठीक नहीं मानते। सिलीकॉन वैली के एक अध्ययन का हवाला देते हुए अमेरिका के स्टैनफर्ड विश्वविद्यालय के शोर्टेस्टीन एशिया-प्रशांत शोध केंद्र में सलाहकार प्रोफेसर और वरिष्ठ शोधार्थी डॉ. रफीक दोसानी ने यह खुलासा किया।

ज्ञान अर्थव्यवस्था की चुनौतियों और अवसरों पर चर्चा करते हुए डॉ. दोसानी ने कहा कि गूगल जैसे आविष्कार के लिए जरूरी है कि कोई अपनी पूंजी को कुछ साल के लिए दांव पर लगाने को तैयार हो। अमेरिका में वेंचर पूंजी के माध्यम से

यह काम संभव हो पाया। इसके अलावा गूगल ने समय के साथ लगातार अपने बिजनेस मॉडल में सुधार किया और जरूरत पड़ने पर अपने मुख्य कार्यकारी लैरी पेज को भी बाहर करने में हिचक नहीं दिखाई। जबकि भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का विकास शुरुआत में उन लोगों ने किया जो पहले से संपन्न थे। ऐसे लोग नई चीजों को भांपने में उतनी तेजी नहीं दिखा पाते। जो लोग ऐसा कर सकते हैं, उन्हें उनके आइडिया में निवेश करने वाले लोगों की आवश्यकता होती है। भारत में इस तरह के निवेश की ज्यादा समृद्ध परंपरा नहीं है। उनके द्वारा दिए गए आंकड़ों से एक और बात स्पष्ट हुई कि भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में शुरुआती पहल करने वाले ज्यादातर लोग वे थे जिनका कभी न कभी अमेरिका से नाता रहा। इनमें विप्रो के मुखिया अजीम प्रेमजी ने स्टैनफर्ड से स्नातक की डिग्री ली तो सत्यम के बी. रामालिंगा राजू ने ओहायो विश्वविद्यालय से एमबीए किया। पीसीएस के चेयरमैन नरेंद्र कुमार पाटनी ने एमआईटी से इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की डिग्री ली और प्रबंधन की भी।

उनके अनुसार सेवा क्षेत्र के विश्व स्तर पर प्रतियोगी होने के कारण रिसेप्शनिस्ट जैसे काम धीरे-धीरे अमेरिका से गायब होते जाएंगे और इनका स्थान भारत जैसे विकासशील देशों के दफ्तरों में बैठी रिसेप्शनिस्ट ले लेंगी जो अमेरिका की कंपनियों में आने वाले ग्राहकों के स्वागत से लेकर कर्मचारियों के लिए कॉफी का ऑर्डर देने तक का काम करेंगी। इस क्रम में अमेरिकी कंपनियों को बड़ी बचत होगी। इसके अलावा छोटी अमेरिकी कंपनियों के लिए तो यह और भी मुनाफे का सौदा होगा क्योंकि ऐसी एक रिसेप्शनिस्ट आठ छोटे दफ्तरों का काम संभाल सकती हैं।

प्रोफेसर दोसानी ने स्पष्ट किया कि भारत की अर्थव्यवस्था अभी ज्यादा ज्ञान आधारित नहीं है। यहां अब भी चीन की तरह मात्र 15 फीसदी काम-काज में प्रोफेशनल या तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता का आकलन किया गया है जबकि अमेरिका में 65 फीसदी काम-काज इस श्रेणी में आते हैं। उन्होंने कहा कि भारत और चीन की अर्थव्यवस्था में तेजी से विकास के बावजूद ये दोनों ही देश अब भी उप-ठेकेदार वाले काम ही कर पा रहे हैं। इन देशों के निर्यातक कलपुर्जे बना रहे हैं लेकिन मूल उपकरण बनाना, मूल डिजाइन तैयार करना या ब्रांड मैनुफैक्चरिंग के रास्ते पर इतनी ज्यादा प्रगति नहीं हुई है। लेकिन आने वाले वर्षों में यह काम हो सकता है। समय के साथ बदलाव आ सकता है। इस बात के उदाहरण हैं कि कैसे एजिलेंट टेक्नोलॉजीज की सहायक भारतीय कंपनी ने डेटा एंट्री के काम से शुरू करने से लेकर तीन साल के अंदर उच्च तकनीकी उत्पाद तैयार करने तक की दौड़ पूरी की।

उनके अनुसार विश्व स्तर पर सेवा बाजार में लगातार वृद्धि हो रही है जिससे ज्ञान अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में अवसर बढ़ रहे हैं। लेकिन इन अवसरों का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए भारत को अपने शैक्षिक ढांचे को बेहतर बनाना होगा और सफल वैश्विक कंपनियां बनाने के लिए खुले दिमाग से काम करना होगा। उन्होंने इशारा किया कि भारत अपनी इन खामियों को दूर करने के लिए अमेरिकी शिक्षा तंत्र और गूगल जैसी नई कंपनियों के विकास से सबक ले सकता है।

फोटो: आर. नारायण

वाराणसी के बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों से बातचीत करते प्रोफेसर दोसानी।

प्रोफेसर दोसानी ने कहा कि भारतीयों के पक्ष में सबसे बड़ी बात यह है कि वे अपने सामाजिक संबंधों से लाभ उठाते हैं। उनका सामाजिक नेटवर्क अपने प्रोफेशनल दोस्तों के अलावा, भारत में अपने मित्रों, रिश्तेदारों और यहां तक कि अपने माता-पिता और दादा-दादी के पिछली पीढ़ियों के नेटवर्क तक जाता है। व्यक्तिगत नेटवर्क के मामले में भारतीय अन्य देशों के लोगों से आगे रहते हैं।

परिचर्चा में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कार्यवाहक कुलपति प्रोफेसर जनक पांडे का कहना था कि आज की दुनिया में कोई देश अलग-थलग नहीं रह सकता। ज्ञान का आदान-प्रदान जरूरी है। उन्होंने और विश्वविद्यालय के वरिष्ठ शिक्षकों ने प्रोफेसर दोसानी के साथ बातचीत में स्टैनफर्ड विश्वविद्यालय से सहभागिता के अवसरों पर भी चर्चा की। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में रेक्टर प्रोफेसर लेले ने नई ज्ञान अर्थव्यवस्था के फायदे उठाने के साथ ही प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर ध्यान देने की जरूरत रेखांकित की। उन्होंने कहा कि ज्ञान अर्थव्यवस्था का विकास समाज से अलग-थलग रहकर नहीं हो सकता।

हिंदी स्पैन के बैनर तले आयोजित कार्यक्रम के मुख्य वक्ता प्रोफेसर दोसानी ज्ञान अर्थव्यवस्था में चुनौतियां और अवसर विषय पर परिचर्चा में भाग लेने इलाहाबाद और वाराणसी गए थे। भारतीय अमेरिकी प्रोफेसर दोसानी नई दिल्ली के सेंट स्टीफंस से अर्थशास्त्र में स्नातक हैं और आईआईएम, कोलकाता से एमबीए। इलाहाबाद और वाराणसी में स्पैन कार्यक्रम के आयोजन का उद्देश्य हिंदीभाषी क्षेत्रों के लोगों से ज्यादा संपर्क स्थापित करना था। स्पैन के पुराने और नए पाठकों को जोड़कर यह भारत और अमेरिका के बीच के सांस्कृतिक पुल को मजबूत करने का प्रयास था।

कार्यकम के आयोजन में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, यूसेफी और इंडो-अमेरिकन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स ने भागीदार की भूमिका अदा की।